प्रसंगशः

आलोक मेहता

प्रसारण पर गिद्धदृष्टि का श्राप

प्रसार भारती की आईएएस लॉबी से मुक्ति का रास्ता नहीं खोजती सरकार

उदार भारत सरकार ने आकाशवाणी और दूरदर्शन की स्वायत्तता कायम रखने के कागजी वायदों के साथ इस वित्तीय वर्ष (2006-2007) के लिए 1,234 करोड़ रुपये के सहायता अनुदान की स्वीकृति दी है। इतनी विपुल धनराशि से विश्व के श्रेष्ठतम प्रसारण केंद्र चल सकते हैं। बशर्ते प्रसारण क्षेत्र के अनुभवी योग्य तथा ईमानदार व्यक्तियों के हाथों में बागडोर हो। लेकिन भारत के प्रसारण-तंत्र में 1978 से आज तक स्वायत्तता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, लोकहित प्रसारण (पब्लिक ब्रॉड-कास्टिंग), पेशेवर (प्रोफेशनल) दृष्टिकोण से प्रभावशाली कार्य इत्यादि के खोखले ढोल पीटे जा रहे हैं। ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, जर्मनी जैसे देशों में स्वायत्तशासी निगमों के माध्यम से रेडियो तथा टेलीविजन प्रसारण की प्रोफेशनल व्यवस्था की तुलना में भारत का कथित स्वायत्तशासी प्रसारण-तंत्र कई गुना घटिया, भ्रष्ट और अक्षम है। व्यावसायिक निजी समाचार चैनलों की बाढ़ के बाद तो दूरदर्शन अधिक बीमार और बेदम दिखने लगा है। ऐसा भी नहीं है कि आकाशवाणी और दूरदर्शन में सक्षम, प्रतिभाशाली, ईमानदार और समर्पित प्रसारकों, अधिकारियों, इंजीनियरों, कलाकारों की कमी है। मजा तो यह है कि ऐसे कई व्यक्ति गैर सरकारी तंत्र में पहुंचकर अधिक उपयोगी और सफल हो रहे हैं। कुछ अनैतिक तरीके से निजी चैनलों को सेवा देकर 'उचित लाभ' भी पा रहे हैं। असल में पिछले 30 वर्षों में कोई सरकार भारतीय प्रसारण-तंत्र को भ्रष्ट आईएएस लॉबी की गिद्धदृष्टि और भक्षण प्रवृत्ति से मुक्ति नहीं दिला सकी है।

इन दिनों एक बार फिर प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह, यूपीए की प्रमुख सोनिया गांधी, सूचना-प्रसारण मंत्री प्रियरंजन दासमुंशी प्रसार भारती को सही रास्ते पर लाने की बातें कर रहे हैं। पर यूपीए राज के प्रारंभिक डेढ़ वर्ष में केंद्रीय मोह माया और निकम्मेपन के कारण सूचना-प्रसारण मंत्रालय और प्रसार भारती की पूरी व्यवस्था डी.टी.सी. की खटारा बसों तथा डी.डी.ए. की खंडहरनुमा कच्ची इमारतों की तरह खस्ता हालत में खिसकती रही। अब मंत्री कल्पवृक्ष का सपना देख रहे हैं और सरकारी तंत्र में बैठे आकाश गोटियां बैठा रहे हैं। देश के भाग्यविधाता राजनेता जब बैंकिंग सेवा में गणित का ज्ञान रखने वाले को उपयुक्त मानते हैं, चिकित्सा सेवा में मेडिकल शिक्षा पाए बिना कोई नियुक्ति नहीं होती, इंजीनियरिंग की शिक्षा न होने पर पुल बनाने की जिम्मेदारी नहीं दी जाती, इतिहासविद को परमाणु ऊर्जा केंद्र में नौकरी नहीं मिलती, तब प्रसारण का क ख ग नहीं जानने वाले आईएएस को आकाशवाणी-दूरदर्शन की दशा-दिशा तय करने की जिम्मेदारी क्यों दे दी जाती है। एक जमाने में केंद्र सरकार में बैठे लोगों को 'भोंपू' की जरूरत अधिक महसूस होती थी। इसलिए नेता अपने निर्वाचन क्षेत्र के संवाददाता से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक प्रोड्यूसर, समाचार संपादक, पत्रकार आदि की नियुक्तियों में गहरी रुचि लेते थे। लेकिन पिछले 20 वर्षों में नेताओं के पास प्रचार के अन्य महंगे संसाधन हो गए हैं। हां, अन्य सार्वजनिक उपक्रमों की तरह दूरदर्शन से अफसरों को होने वाली 'ऊपरी कमाई' में हिस्सेदारी में अवश्य उनकी रुचि बढ़ गई है। निजी निर्माताओं से कार्यक्रम निर्माण और क्रिकेट या अन्य लोकप्रिय खेल प्रसारण में कमीशनखोरी का दुष्चक्र गहराता गया है। आकाशवाणी और दूरदर्शन की इमारतों के निर्माण और भारी भरकम स्टूडियो तथा अत्याधुनिक कैमरों-उपकरणों की खरीदी में सबकी गहरी दिलचस्पी रहती है। लेकिन अच्छे कार्यक्रमों के निर्माण, समाचारों के संकलन से लेकर उनके व्यापक कवरेज, विश्लेषण, प्रस्तुतीकरण में हरसंभव गड़बड़ियां जारी रहती हैं। केंद्र की सत्ताधारी सरकारें हर बार स्वायत्तता की बात करती हैं लेकिन प्रसार भारती में राजनैतिक प्रतिबद्धता वाले लोग भरे जाते हैं। पराकाष्ठा यह है कि कानूनी कारणों से एक बार प्रसार भारती में घुसे लोग अक्षम, अयोग्य, सांप्रदायिक होते हुए वर्चस्व बनाए हुए हैं। जनता को सही और उपयोगी जानकारी, स्वस्थ मनोरंजन देने की पब्लिक ब्रॉडकास्टिंग की अवधारणा को बेहद फूहड़ ढंग से पूरा किया जाता है। अच्छे कार्यक्रमों के लिए खर्च कम होता गया है। अमेरिका, ब्रिटेन, जर्मनी, कनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया में पब्लिक ब्रॉड-कास्टिंग को मजबूत रखने के लिए रेडियो, टीवी सेट रखने वाले नागरिकों से ही थोड़ा शुल्क ले लिया जाता है। भारत में भी ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं हो सकती? आखिरकार, देश के 70 प्रतिशत ग्रामीण, आदिवासी, पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी दूरदर्शन की पहुंच सर्वाधिक है। शायद कम लोग जानते हों कि आज भी देश में 60 प्रतिशत टेलीविजन सेट ब्लैक एंड व्हाइट हैं और उनमें सिर्फ 8 चैनल देखे जा सकते हैं। उन क्षेत्रों के दर्शकों को अपनी भाषा में स्वस्थ मनोरंजन के साथ शिक्षा, स्वास्थ्य, संस्कृति, पर्यटन जैसे विषयों पर अधिकाधिक कार्यक्रमों की भूख रहती है। फिल्मों और फिल्मी गानों की रॉयल्टी पर बड़ी धनराशि के खर्च का एक हिस्सा अच्छे कलाकारों के गीत-संगीत, नृत्य, नाटक इत्यादि के प्रसारण को क्यों नहीं दिया जा सकता। जर्मनी और जापान में पब्लिक ब्रॉडकास्टिंग संस्थान प्राइम टाइम में भी अच्छे नाटक और गीत-संगीत के श्रेष्ठतम कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। भारत में जरा पता लगा लें- शुभा मुद्गल जैसी ख्यातिप्राप्त गायिका के लिए भी रेडियो-दूरदर्शन के अधिकारी किस तरह और कितना कम शुल्क निर्धारित करते हैं। दूरदर्शन के न्यूज चैनल का हाल यह है कि यूपीए सरकार आने के बाद उसने अपने विभिन्न कार्यक्रमों के पूर्व निर्धारित शुल्कों में ही कमी कर दी। विरोधाभास वाली उदार प्रगतिशील सरकार को लगता है कि महंगाई कम हो गई है और विकास-दर बढ़ गई है इसलिए अच्छे कार्यक्रमों पर खर्च कम करना जरूरी है।

आज भी देश में लोगों के पास 60 प्रतिशत टेलीविजन सेट ब्लैक एंड व्हाइट हैं और उनमें सिर्फ 8 चैनल देखे जा सकते हैं।

सवाल यह है कि सत्ता में आने वाली कोई भी सरकार 'स्वायत्तता' को सही ढंग से परिभाषित और क्रियान्वित क्यों नहीं करती। पब्लिक ब्रॉडकास्टिंग कॉर्पोरेशन से मुनाफे की अपेक्षा क्यों की जाती है? निजी चैनलों से प्रतियोगिता के नाम पर प्रसार भारती के प्रसारण-तंत्र को घटिया तरीके से पैसा कमाने की मशीन के रूप में इस्तेमाल क्यों किया जाता है? यदि सही ढंग से स्वायत्तता और स्वतंत्रता नहीं देनी है तो रूस और चीन की तरह ही सरकारी प्रसारण तंत्र के सरकारी चैनल चलाए जाएं ताकि कम से कम कोई मंत्री उसके अच्छे-बुरे के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सके। अभी तो स्वायत्तता के नाम पर स्वच्छंदता और अराजकता का नग्न तांडव ही अधिक प्रदर्शित हो रहा है। संसद में प्रसार-भारती पर सवाल उठते हैं लेकिन सुनियोजित बहस कई वर्षों में नहीं सुनाई दी। सूचना का अधिकार देने का दावा करने वाली सरकार अपने प्रसारण-तंत्र के कामकाज को अधिक पारदर्शी बनाकर क्यों नहीं दिखा सकती? प्रसार-भारती के साथ दूरदर्शन और आकाशवाणी के कायाकल्प के लिए आईएएस लॉबी के नागपाश की नहीं, दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति की जरूरत है। भारत जैसे देश में पब्लिक ब्रॉडकास्टिंग को सशक्त किए बिना अज्ञान, अंधविश्वास, पाखंड, जादू-टोने, नीम-हकीम से गरीब गांवों-कस्बों की भोली-भाली जनता को मुक्ति दिला पाना क्या संभव होगा? आने वाले वर्षों में निजी एफ.एम. चैनलों की बाढ़ भी आने वाली है लेकिन उन्हें बाजार की मांग निर्देशित करेगी। सार्वजनिक हितों की चिंता करने वालों को एक जिम्मेदार प्रसारण-तंत्र तो किसी न किसी रूप में जीवित रखना होगा। उदार प्रगतिशील सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती यही होगी। ●